

तंत्र • मार्गों का संगम

आगम से अद्वैत तक

लेखक: Aadisatv

शाक्त, शैव और बौद्ध तंत्र की समावेशी आध्यात्मिक यात्रा

विषय-सूची

- अध्याय 1 — तंत्र की उत्पत्ति और विस्तार: आगम, निगम और कुल मार्ग
- अध्याय 2 — शाक्त तंत्र: देवीमाहात्म्य से दस महाविद्या तक
- अध्याय 3 — कौल मार्ग: पंचमकार और वाम-दक्षिण की वास्तविक समझ
- अध्याय 4 — हठयोग और तंत्र: कुंडलिनी, चक्र और नाड़ी-विज्ञान
- अध्याय 5 — बौद्ध तंत्र: महामुद्रा, करुणा और शून्यता
- अध्याय 6 — मंत्र, यंत्र और देवता: प्रतीक से प्रत्यक्ष तक
- अध्याय 7 — तंत्र की समकालीन प्रासंगिकता: जीवन में सहज साधना

अध्याय 1 — तंत्र की उत्पत्ति और विस्तार: आगम, निगम और कुल मार्ग

तंत्र को समझने के लिए पहले यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय आध्यात्मिकता केवल एक नदी नहीं है। यहाँ वेद हैं, उपनिषद हैं, पुराण हैं, योग है, सांख्य है, भक्ति है, और इनके समानांतर एक गुप्त, जीवित, उष्ण धारा है — आगम की धारा। निगम उस परंपरा का नाम है जो वेदों से उतरती है; आगम उस वाणी का नाम है जो देव से देवी, शिव से शक्ति, गुरु से शिष्य, चेतना से चेतना में उतरती है। दोनों विरोधी नहीं। एक आकाश से आती ध्वनि है, दूसरा हृदय में उतरता स्पर्श। निगम कहता है — सत्य को जानो। आगम कहता है — सत्य को अपने शरीर, श्वास, मंत्र, रूप, ऊर्जा और जीवन में जगाओ।

तंत्र का प्रारंभ वहीं होता है जहाँ ज्ञान केवल विचार रहना बंद करता है। तंत्र ज्ञान को देह से गुजरने देता है, श्वास से, मुद्रा से, मंत्र से, यंत्र से, गुरु की दीक्षा से, चित्त की गहराइयों से। वह कहता है कि यदि सत्य सर्वव्यापी है, तो शरीर उसके बाहर कैसे हो सकता है? यदि ब्रह्म सब है, तो प्रतीक, ध्वनि, स्पर्श, रूप, अग्नि, भैरव, भैरवी — ये सब किससे बने हैं? तंत्र वेदांत का विरोध नहीं; तंत्र वेदांत की देहधारी प्रत्यक्षता है। वेदांत जहाँ कहता है “तुम वही हो”, तंत्र पूछता है — क्या यह पहचान तुम्हारी आँख, त्वचा, प्राण, इच्छा और भय तक उतरी है?

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्।

त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

(स्रोत: तांत्रिक व्युत्पत्ति-परंपरा)

अर्थ: जो तत्त्व और मंत्र से युक्त होकर अर्थों का विस्तार करे और साधक की रक्षा करे, वही तंत्र कहलाता है।

तंत्र का “विस्तार” बाहरी ज्ञान का संग्रह नहीं है। यह चेतना की सिकुड़ी हुई पहचान का फैलना है। साधक पहले स्वयं को शरीर मानता है, फिर मन, फिर साधक, फिर अनुभवों का भोक्ता। तंत्र उसकी पहचान को फैलाकर दिखाता है कि देह भी चेतना में है, मन भी, जगत भी, देवता भी, मंत्र भी। रक्षा का अर्थ भी केवल बाहरी सुरक्षा नहीं। तंत्र साधक की रक्षा उसके ही संकुचित अहंकार से करता है। वह उसे जीवन से भागने नहीं देता, और जीवन में सो जाने भी नहीं देता।

आगम के चार पाद इसी समग्रता को क्रम देते हैं — ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या। ज्ञान पाद बताता है कि सत्य क्या है; योग पाद बताता है कि उस सत्य में प्रवेश कैसे हो; क्रिया पाद मंदिर, मूर्ति, मंत्र, यंत्र, दीक्षा और अनुष्ठान की विज्ञान-संरचना देता है; चर्या पाद जीवन को साधना में बदलता है। इसीलिए आगम केवल पूजा-पद्धति नहीं। वह अस्तित्व को पवित्र रूप से जीने का विज्ञान है। उसमें ज्ञान बिना क्रिया के सूखा है, क्रिया बिना ज्ञान के अंधी, योग बिना चर्या के अधूरा, और चर्या बिना अंतर्दृष्टि के यांत्रिक।

चैतन्यमात्मा। (स्रोत: शिवसूत्र १.१)

अर्थ: चेतना ही आत्मा है।

तंत्र का मूल भी यही है। यदि आत्मा चेतना है, तो हर साधना का अर्थ चेतना की ओर लौटना है। पर यह लौटना किसी दूर स्थान पर जाना नहीं। चेतना अभी भी देख रही है, सुन रही है, अनुभव कर रही है। आगम इस चेतना को केवल दार्शनिक सूत्र में नहीं छोड़ता। वह उसे मंत्र में जगाता है, श्वास में, नाड़ी में, देवता की प्रतिमा में, गुरु की दृष्टि में। साधक धीरे-धीरे देखता है कि साधन वस्तु नहीं हैं; वे चेतना को चेतना की ओर मोड़ने की युक्तियाँ हैं।

शैव आगमों में शिव कोई बाहरी देवता मात्र नहीं, स्वयंप्रकाश चैतन्य है। शाक्त तंत्रों में देवी कोई केवल पौराणिक माता नहीं, उसी चेतना की क्रियाशील शक्ति है। बौद्ध वज्रयान में देवता-साधना कोई मूर्ति-पूजा नहीं, बल्कि शून्यता और करुणा की तदाकार साधना है। ये तीनों धाराएँ अलग भाषा बोलती हैं, पर एक ही रहस्य की ओर लौटती हैं — चेतना स्वयं को पहचानना चाहती है, और पहचान के लिए वह रूप भी बनाती है, मंत्र भी, योग भी, गुरु भी।

चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः। (स्रोतः प्रत्यभिज्ञाहृदयम् १)

अर्थः चिति स्वतंत्र है और वही विश्व की सिद्धि का कारण है।

यहाँ तंत्र की सबसे बड़ी नींव खुलती है। यदि चिति स्वतंत्र है, तो जगत उसकी मजबूरी नहीं, उसका खेल है। संसार कोई गलती नहीं, कोई अपराध नहीं, कोई केवल बंधन नहीं। यह चेतना का विस्तार है। पर साधक इस विस्तार में खो जाता है क्योंकि वह रूप को मूल मान लेता है। आगम उसे रूप का सम्मान करना सिखाता है, पर रूप में बंधना नहीं। मंत्र का जप करो, पर ध्वनि में अटकना नहीं। यंत्र को देखो, पर रेखा को अंतिम मत मानो। देवता की उपासना करो, पर देवता को स्वयं से अलग कोई स्थायी वस्तु मत बनाओ।

कुल मार्ग इसी समग्र दृष्टि का एक और गुप्त आयाम है। “कुल” का अर्थ परिवार मात्र नहीं; यहाँ कुल का अर्थ है चेतना, शक्ति, देह, जगत और साधक की समग्र एकता। अकुल शिव है — असीम, निराकार, स्वतंत्र। कुल शक्ति है — वही चेतना जब देह, अनुभव, संबंध, ऊर्जा, जगत और रस के रूप में प्रकट होती है। कुल मार्ग कहता है कि अकुल को कुल में पहचानो। निराकार को रूप से भागकर नहीं, रूप में आर-पार देखकर पहचानो।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्। (स्रोतः विज्ञानभैरव तंत्र, परंपरागत भाव)

अर्थः मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ परम पद की संभावना है।

यह वाक्य यदि अयोग्य मन सुन ले तो वह इसे भोग की अनुमति समझेगा। पर तांत्रिक साधक जानता है कि इसका अर्थ है — किसी भी अनुभव को चेतना से बाहर मत मानो। भय उठा, वहाँ भी जागो। इच्छा उठी, वहाँ भी जागो। क्रोध उठा, वहाँ भी जागो। मौन आया, वहाँ भी जागो। ध्यान आया, वहाँ भी जागो। तंत्र का मार्ग अनुभवों को इकट्ठा करने का मार्ग नहीं; अनुभवों में चेतना को न खोने की कला है।

सर जॉन वुड्रॉफ, जिन्हें आर्थर अवलोन के नाम से भी जाना जाता है, ने पश्चिमी जगत के सामने तंत्र को पहली बार गंभीरता और सम्मान से रखा। उन्होंने यह दिखाया कि तंत्र को केवल विकृत सामाजिक कल्पनाओं से समझना अन्याय है। गोपीनाथ कविराज ने साधना और शास्त्र के बीच की उस सूक्ष्म भूमि पर ध्यान दिलाया जहाँ सिद्धांत जीवित अनुभव में बदलता है। अलेक्सिस सैंडरसन जैसे विद्वानों ने शैव तंत्र के इतिहास और ग्रंथ-परंपरा का गंभीर अध्ययन किया, जिससे स्पष्ट हुआ कि तंत्र कोई हाशिये की धारा नहीं, भारतीय आध्यात्मिक इतिहास की महान रचनात्मक शक्तियों में से एक है।

पर अंततः तंत्र पुस्तक में नहीं खुलता। वह तब खुलता है जब साधक अपने ही जीवन को साधना-भूमि मानने लगता है। भोजन, संबंध, शरीर, भय, इच्छा, मृत्यु, कला, मौन — कोई भी क्षेत्र बाहर नहीं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सब कुछ मनमाने ढंग से किया जाए। तंत्र में अधिकार, गुरु, दीक्षा, शुद्धि और विवेक आवश्यक हैं। क्योंकि जिस मार्ग में कुछ भी बाहर नहीं, उसमें अचेतनता की अनुमति भी नहीं।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

(स्रोतः सौन्दर्यलहरी १)

अर्थः शिव शक्ति से युक्त होकर ही प्रकट होने में समर्थ हैं; शक्ति के बिना वे स्पंदित भी नहीं होते।

यहाँ वेदांत और तंत्र मिलते हैं। शुद्ध चेतना और उसकी प्रकट शक्ति दो नहीं। ज्ञान और जगत दो नहीं। मौन और स्पंद दो नहीं। साधक जब केवल मौन पकड़ता है, वह शक्ति को खो देता है। जब केवल शक्ति पकड़ता है, वह मौन खो देता है। तंत्र उसे दोनों की अभिन्नता में बैठाता है। यही आगम से अद्वैत की यात्रा है — ज्ञान प्रतीक में उतरता है, प्रतीक चेतना में पिघलता है, और अंततः साधक देखता है कि जिस सत्य को वह खोज रहा था, वही हर साधन के भीतर से उसे देख रहा था।

अध्याय 2 — शाक्त तंत्र: देवीमाहात्म्य से दस महाविद्या तक

शाक्त तंत्र की भूमि में प्रवेश करते ही भाषा बदल जाती है। यहाँ सत्य केवल “वह” नहीं रहता, “माँ” हो जाता है। यहाँ ब्रह्म केवल निर्गुण निस्तब्धता नहीं, जगत को जन्म देने वाली, धारण करने वाली, काटने वाली, ढकने वाली और मुक्त करने वाली शक्ति है। देवी कोई कल्पना नहीं; वह चेतना की क्रियाशीलता है। शिव यदि स्वयंप्रकाश है, तो देवी उस प्रकाश की स्पंदित क्षमता है। वह जागरण भी है, मोह भी, निद्रा भी, स्मृति भी, भूख भी, करुणा भी। इसलिए शाक्त तंत्र किसी एक कोने में नहीं रहता। वह मनुष्य की संपूर्णता को छूता है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

(स्रोत: देवीमाहात्म्य ५.१६)

अर्थ: जो देवी सभी प्राणियों में शक्ति रूप से स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

देवी बाहर बैठी हुई केवल पूजा की वस्तु नहीं। वह सर्वभूतों में शक्ति रूप से स्थित है। श्वास चल रही है — वही। मन सोच रहा है — वही। अग्नि जलती है — वही। बालक रोता है, नदी बहती है, योद्धा लड़ता है, साधक ध्यान करता है — शक्ति ही रूप बदलकर कार्य कर रही है। जब साधक देवी को पहचानना शुरू करता है, तो उसका शरीर अपवित्र नहीं रहता, मन शत्रु नहीं रहता, प्रकृति जड़ नहीं रहती। सबमें शक्ति की उपस्थिति दिखने लगती है। पूजा तब बाहरी फूलों से आगे जाती है और जीवन का प्रत्येक अनुभव वेदी बन सकता है।

देवीमाहात्म्य में देवी असुरों का वध करती है, पर इन असुरों को केवल बाहरी मिथकीय पात्र समझना पर्याप्त नहीं। मधु-कैटभ, महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ — ये चेतना की वे शक्तियाँ हैं जो विकृत होकर अहंकार, जड़ता, हिंसा, गर्व और विभाजन के रूप में खड़ी हो जाती हैं। देवी का युद्ध अंततः भीतर का युद्ध है, जहाँ चेतना अपनी ही विकृत शक्तियों को वापस संतुलित करती है। वह नष्ट केवल रूप को करती है, शक्ति को नहीं। शक्ति लौटती है, शुद्ध होती है, फिर देवी में ही विलीन हो जाती है।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(स्रोत: देवीमाहात्म्य ११.१०)

अर्थ: हे सर्वमंगलमयी, शिवा, सब अर्थों को सिद्ध करने वाली, शरण देने वाली त्र्यम्बका गौरी नारायणी, आपको नमस्कार है।

यहाँ देवी “शिवा” कहलाती हैं। इसका अर्थ है कि शक्ति शिव से अलग नहीं। वह केवल क्रिया नहीं, मंगल भी है; केवल उग्रता नहीं, आश्रय भी है। शाक्त तंत्र की परिपक्वता इसी संतुलन में है। काली भयानक दिखती हैं, पर उनका भय समय के भय को काटता है। तारा मृत्यु के पार ले जाती हैं। त्रिपुरसुंदरी सौंदर्य को ब्रह्मानंद में बदल देती हैं। भुवनेश्वरी आकाश की तरह सबको धारण करती हैं। छिन्नमस्ता अहंकार का सिर काटकर जीवन-ऊर्जा को मुक्त करती हैं। भैरवी तप की अग्नि हैं। धूमावती शून्य और वृद्धावस्था का नग्न सत्य हैं। बगलामुखी वाणी और गति को रोकती हैं। मातंगी अपवर्जित में भी देवत्व दिखाती हैं। कमला समृद्धि को केवल धन नहीं, जीवन की पूर्णता बनाती हैं।

दस महाविद्याएँ भय और भोग की देवी नहीं। वे चेतना के दस रस हैं। साधक जिस शक्ति से डरता है, वही एक महाविद्या का द्वार हो सकती है। समय से डरता है — काली। शून्य से डरता है — धूमावती। सौंदर्य से आसक्त है — त्रिपुरसुंदरी उसे रस से ब्रह्म तक ले जाएँगी। वाणी में

उलझा है — मातंगी उसे ध्वनि की जड़ तक ले जाएँगी। समृद्धि में खोता है — कमला उसे समृद्धि की चेतना दिखाएँगी। इस तरह देवी-साधना मनुष्य को उसके भीतर की संपूर्ण ऊर्जा से परिचित कराती है।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

(स्रोतः सौन्दर्यलहरी १)

अर्थः शिव शक्ति से संयुक्त होकर ही प्रकट होते हैं; अन्यथा वे स्पंदित भी नहीं हो सकते।

शाक्त दृष्टि इस श्लोक को केवल काव्य नहीं मानती। यह उसके दर्शन का मूल है। शक्ति शिव की दासी नहीं; शिव की अपनी प्रकटता है। यदि चेतना स्वयं को व्यक्त न करे, तो अनुभव कहाँ से आएगा? प्रेम, करुणा, ज्ञान, साधना, जगत, मुक्ति — सब शक्ति की ही लहरें हैं। इसलिए देवी की पूजा किसी बाहरी स्त्री-देवता का महिमामंडन मात्र नहीं। वह अपनी ही चेतना की शक्ति को पहचानने की साधना है। जिस दिन साधक देखता है कि उसकी इच्छा, उसकी करुणा, उसकी वाणी, उसकी चुप्पी — सब शक्ति की तरंगें हैं, उसी दिन पूजा भीतर उतरती है।

त्रिपुरा रहस्य में देवी ज्ञान और शक्ति की ऐसी समन्वित भूमि के रूप में आती हैं जहाँ संसार को त्यागना नहीं, उसकी प्रकृति को जानना है। त्रिपुरा तीन अवस्थाओं — जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति — की भी अधिष्ठात्री हैं, और उन तीनों से परे चैतन्य की भी। जो देवी जाग्रत जगत में रूप बनती है, वही स्वप्न में चित्र बनती है, वही गहरी नींद में आच्छादन बनती है, और वही तुरीय में स्वयं को प्रकट करती है।

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।

यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत्सनातनम्॥

(स्रोतः त्रिपुरा रहस्य, ज्ञानखण्ड परंपरागत भाव)

अर्थः चित्त ही संसार है; इसलिए उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिए। चित्त जैसा होता है, साधक वैसा ही अनुभव करता है।

देवी की साधना चित्त को शक्ति से भरती नहीं; चित्त को उसकी शक्ति की जड़ दिखाती है। यदि चित्त भय में है, तो देवी भयावह दिखेंगी। यदि चित्त प्रेम में है, तो देवी करुणामयी। यदि चित्त ज्ञान में स्थिर है, तो देवी स्वयं चिति बनकर प्रकट होती हैं। इसी कारण शाक्त मार्ग में बाहरी रूप विविध हैं, पर अंतर्दृष्टि एक है — शक्ति को पहचानो, शक्ति से डरो मत, शक्ति में खोओ मत। उसे उसके शिवस्वरूप में जानो।

स्वामी विवेकानंद ने शक्ति की आवश्यकता को बार-बार रेखांकित किया। उनके लिए शक्ति केवल शारीरिक बल नहीं थी, बल्कि आत्मविश्वास, निर्भयता, करुणा और जागरण की ऊर्जा थी। शाक्त तंत्र में यह बात और गहरी हो जाती है — निर्बलता भी शक्ति का विस्मरण है। साधक जब अपने भीतर की देवी को पहचानता है, तो वह दीन नहीं रहता। वह अहंकारी भी नहीं होता। वह जानता है कि यह शक्ति “मेरी” नहीं, मुझमें प्रकट हो रही चेतना की है।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

(स्रोतः देवीमाहात्म्य ५.२०)

अर्थः जो देवी सभी प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

देवी केवल ऊर्जा नहीं; बुद्धि भी देवी है। केवल भाव नहीं; विवेक भी। केवल उग्रता नहीं; सूक्ष्म स्पष्टता भी। इसी से शाक्त तंत्र अंधी भक्ति नहीं बनता। वहाँ शक्ति और ज्ञान साथ हैं। माँ की गोद भी है और माँ की तलवार भी। गोद में साधक पिघलता है, तलवार से उसका अज्ञान कटता है। दस महाविद्याएँ इसी तलवार और करुणा की दस दिशाएँ हैं।

जब शाक्त साधना परिपक्व होती है, साधक देवी को बाहर से भीतर लाता है और फिर भीतर-बाहर का भेद गिरने लगता है। प्रतिमा आँखों से उतरकर हृदय में बैठती है। मंत्र केवल ध्वनि नहीं रहता, श्वास की लय बनता है। शक्ति केवल देवी का गुण नहीं, स्वयं जीवन का स्वभाव दिखती है। तब साधक देवी से कुछ माँगता कम है, देवी में स्वयं को पहचानता अधिक है। यही शाक्त तंत्र का अद्वैत है — माँ और मैं दो नहीं। शक्ति ही साधक बनकर शक्ति को खोज रही थी।

अध्याय 3 — कौल मार्गः पंचमकार और वाम-दक्षिण की वास्तविक समझ

कौल मार्ग तंत्र का सबसे अधिक गलत समझा गया प्रदेश है। जहाँ साधक को अत्यंत विनम्र, अत्यंत जागरूक और अत्यंत अधिकारी होना चाहिए था, वहाँ सामान्य मन ने सनसनी खोज ली। पंचमकार — मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन — इन शब्दों ने लोगों की कल्पना को उतना ही भटका दिया जितना किसी शास्त्र ने शायद कभी नहीं भटकाया। पर कौल मार्ग इन वस्तुओं का भोगवादी उत्सव नहीं है। यह चेतना की ऐसी कठोर परीक्षा है जहाँ निषेध और आकर्षण दोनों के पार स्थिर होना पड़ता है।

कुलार्णव तंत्र बार-बार कहता है कि तंत्र गुरु के बिना नहीं खुलता। कारण स्पष्ट है। साधारण मन निषिद्ध वस्तु को देखते ही या तो डर जाता है या उसमें गिर जाता है। कौल साधना इन दोनों प्रतिक्रियाओं से आगे की मांग करती है। वहाँ साधक को देखना होता है कि वस्तु में शक्ति है, पर मैं वस्तु का दास नहीं। समाज ने जिसे निषिद्ध कहा, उसमें आकर्षण जमा हो जाता है; जिसे पवित्र कहा, उसमें अहंकार छिप जाता है। कौल मार्ग इन दोनों को काटकर चेतना की अचलता की परीक्षा लेता है।

गुरुं विना न सिद्धिः स्यान्न मन्त्रः सिद्धिदायकः।

गुरुप्रसादमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते॥

(स्रोतः कुलार्णव तंत्र, गुरु-तत्त्व प्रकरण, परंपरागत पाठ)

अर्थः गुरु के बिना सिद्धि नहीं होती; मंत्र भी फलदायी नहीं होता। गुरु-कृपा से ही सिद्धि प्रकट होती है।

यहाँ गुरु केवल व्यक्ति नहीं, वह जीवित अग्नि है जो साधक की आत्म-छलना को जला सकती है। पंचमकार जैसे विषयों में साधक स्वयं को बहुत आसानी से धोखा दे सकता है। वह कह सकता है कि मैं निषेध से परे हूँ, जबकि भीतर वासना चल रही हो। वह कह सकता है कि मैं शुद्ध हूँ, जबकि भीतर भय और दमन छिपा हो। गुरु की उपस्थिति इसलिए आवश्यक है कि वह साधक को उसके ही अंधे कोनों से परिचित कराए। कौल मार्ग स्वच्छंदता नहीं; वह अनुशासित अग्नि है।

मद्य केवल बाहरी मदिरा का विषय नहीं। उसका सूक्ष्म अर्थ है वह चेतना-रस जो अहंकार की कठोरता को पिघला दे। पर यदि साधक अचेतन है, तो मद्य उसे नीचे गिराएगा। मांस का एक अर्थ है इंद्रिय-आसक्ति और स्वाद की पकड़; सूक्ष्म अर्थ है वाणी और प्रवृत्तियों का संयम। मत्स्य दो धाराओं में तैरती प्राण-शक्ति का प्रतीक भी रहा है। मुद्रा केवल अन्न या मुद्रा नहीं, चेतना की मुहर है, वह स्थिति जिसमें ऊर्जा दिशाहीन नहीं भटकती। मैथुन का स्थूल अर्थ सबसे अधिक सनसनी पैदा करता है, पर उसका अंतिम अर्थ है शिव और शक्ति की आंतरिक ऐक्यता — चेतना और ऊर्जा का मिलन। अधिकारी साधक के लिए बाहरी विधियाँ भी रही होंगी, पर वे साधारण मन के मनोरंजन के लिए नहीं थीं।

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः। (स्रोतः कुलार्णव तंत्र, कौल-भाव परंपरा)

अर्थः बंधनों से बँधा हुआ जीव है; बंधनों से मुक्त वही सदाशिव है।

पंचमकार का उद्देश्य नया बंधन बनाना नहीं, पुराने पाशों को उजागर करना है। पाश केवल वस्तु नहीं; वस्तु के प्रति मन की प्रतिक्रिया है। किसी को मद्य आकर्षित करता है, किसी को घृणा। किसी को शरीर बाँधता है, किसी को शरीर-द्वेष। किसी को पवित्रता का अहंकार बाँधता है, किसी को अपवित्रता का मोह। कौल साधना पूछती है — क्या तुम इन प्रतिक्रियाओं से परे देख सकते हो? क्या तुम वस्तु के बीच भी चेतना में स्थिर रह सकते हो? यदि नहीं, तो निषिद्ध वस्तु को छूना साधना नहीं, मूर्खता है।

वाम मार्ग और दक्षिण मार्ग के भेद को भी संतुलित दृष्टि से समझना चाहिए। दक्षिण मार्ग प्रतीक, आंतरिक भाव, शुद्ध आचार और मानसिक अर्पण द्वारा साधना करता है। वह ऊर्जा को रूपांतरित करता है, पर निषिद्ध वस्तुओं से बाहर ही रहता है। वाम मार्ग कुछ परिस्थितियों में उन वस्तुओं का भी उपयोग करता है जिन्हें समाज निषिद्ध मानता है, पर उसका लक्ष्य सामाजिक विद्रोह नहीं, चेतना की अचलता है। दोनों में कोई एक स्वभावतः श्रेष्ठ नहीं। श्रेष्ठ वही है जो साधक के अधिकार, संस्कार, गुरु और अंतःशुद्धि के अनुकूल हो।

न मद्यं न मांसं न च मैथुनादि
कौलस्य सारं परमार्थतो हि।
चित्तस्य विश्रान्तिरखण्डबोधे
सा कौलसिद्धिः परिकीर्तिता॥

(स्रोत: कौल-तांत्रिक मौखिक परंपरा का भाव-सार)

अर्थ: मद्य, मांस या मैथुन अपने-आप कौल का सार नहीं; अखंड बोध में चित्त की विश्रान्ति ही कौल सिद्धि है।

यही बात कौल मार्ग को भोग से अलग करती है। यदि साधक वस्तु में खो गया, तो वह साधना से गिर गया। यदि वस्तु से डर गया, तो भी वह मुक्त नहीं हुआ। यदि वस्तु के बीच, ऊर्जा के बीच, आकर्षण और निषेध के बीच भी चित्त अखंड बोध में स्थिर रहा, तभी कौल का रहस्य छूता है। यह अत्यंत ऊँची साधना है, अत्यंत दुर्लभा। इसे सामान्य जीवन में लागू करने का अर्थ बाहरी पंचमकार नहीं, बल्कि अपने भीतर के आकर्षण-द्वेष को पहचानना है।

महानिर्वाण तंत्र में शाक्त-तांत्रिक जीवन का एक सामाजिक आयाम भी दिखाई देता है। वहाँ गृहस्थ जीवन, विवाह, समाज, दान, धर्म और साधना को एक साथ रखा गया है। यह स्मरण दिलाता है कि तंत्र केवल श्मशान या गुफा का मार्ग नहीं। वह जीवन के बीच भी उतरता है। पर जहाँ जीवन है, वहाँ मर्यादा भी है। कौल मार्ग की वास्तविकता इसी मर्यादा में सुरक्षित रहती है। अयोग्य को गुप्त विधि देना वैसा ही है जैसे बालक के हाथ में अग्नि रख देना।

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन। (स्रोत: कुलार्णव तंत्र, गुरु-माहात्म्य परंपरा)

अर्थ: शिव रुष्ट हों तो गुरु रक्षा कर सकता है; गुरु रुष्ट हो जाए तो कोई रक्षा नहीं।

इस कठोर पंक्ति का भाव यह नहीं कि गुरु को भय की वस्तु बना दिया जाए। इसका अर्थ है कि मार्ग में गुरु की भूमिका अत्यंत गंभीर है। तंत्र में ऊर्जा तीव्र है, प्रतीक गहरे हैं, मन की छाया बहुत जल्दी सक्रिय होती है। गुरु साधक को केंद्र देता है। वह बताता है कि कौन-सा मार्ग किसके लिए है। दक्षिण हो या वाम, बाह्य हो या आंतरिक, प्रतीक हो या प्रत्यक्ष — बिना विवेक सब भटकाव हो सकता है।

आज के समय में पंचमकार की वास्तविक समझ यह है कि साधक अपने भीतर के निषेध, भय, आकर्षण और दमन को देखे। भोजन में, संबंध में, कामना में, शक्ति में, वाणी में — मन कहाँ चिपकता है, कहाँ डरता है? कौल दृष्टि हमें ईमानदार बनाती है। वह कहती है कि आध्यात्मिकता केवल उजले हिस्सों की सजावट नहीं। जो छाया में है, उसे भी जागरूकता चाहिए। पर छाया में उतरने के लिए दीपक चाहिए, गुरु चाहिए, और भीतर सत्य के लिए निर्मम प्रेम चाहिए।

कौल मार्ग का अंतिम रहस्य बाहर की किसी वस्तु में नहीं, कुल और अकुल की एकता में है। शरीर कुल है, चेतना अकुल। शक्ति कुल है, शिव अकुल। साधक कुल है, सत्य अकुल। जब साधक देह और जगत में उसी अकुल को पहचानता है, तब कौल मार्ग अपने शिखर पर पहुँचता है।

वहाँ पंचमकार पीछे छूट जाते हैं, वाम-दक्षिण का भेद भी पीछे रह जाता है। केवल यह स्पष्टता बचती है — जिसे मैं बंधन मान रहा था, वही जागरण का द्वार बन सकता है, यदि मैं उसमें सोऊँ नहीं।

अध्याय 4 — हठयोग और तंत्र: कुंडलिनी, चक्र और नाड़ी-विज्ञान

हठयोग को यदि केवल शारीरिक आसनों की प्रणाली समझ लिया जाए, तो उसका तांत्रिक हृदय छूट जाता है। हठयोग तंत्र और योग के बीच खड़ा वह व्यावहारिक पुल है जहाँ शरीर साधना का उपकरण बनता है, प्राण मार्ग बनता है, नाड़ी अंतर्मार्ग बनती है, और कुंडलिनी चेतना की सुप्त शक्ति के रूप में समझी जाती है। हठयोगप्रदीपिका का योग शरीर से शुरू होकर शरीर में समाप्त नहीं होता। वह प्राण को सुषुम्ना में स्थिर कर चित्त को उसके मूल में ले जाना चाहता है।

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।

सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाधारो हि कुण्डली॥

(स्रोत: हठयोगप्रदीपिका ३.१)

अर्थ: जैसे पर्वतों और पृथ्वी का आधार शेषनाग माना गया है, वैसे ही सभी योग और तंत्रों का आधार कुंडलिनी है।

कुंडलिनी को लेकर आधुनिक कल्पना में बहुत भ्रम है। इसे कभी केवल विद्युत अनुभव मान लिया जाता है, कभी चमत्कार, कभी डर, कभी रोग। पर शास्त्रीय दृष्टि में कुंडलिनी चेतना की वह संकुचित, कुंडलित शक्ति है जो देह-प्राण-मन की संरचना में सुप्त है। वह जागरण का अर्थ है — ऊर्जा का अंधे विषयों में बहना बंद होकर चेतना के ऊर्ध्व मार्ग में प्रवेश करना। यह कोई तमाशा नहीं। यह साधक के पूरे जीवन, आहार, आचरण, श्वास, ध्यान और गुरु-दीक्षा से जुड़ी प्रक्रिया है।

हठयोग नाड़ी-विज्ञान को अत्यंत महत्व देता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना केवल सूक्ष्म शरीर की कल्पना नहीं; वे मनुष्य की ऊर्जा-लय का आंतरिक मानचित्र हैं। इड़ा चंद्र-स्वभाव, शीतलता, संवेदनशीलता और मन की धारा से जुड़ी है। पिंगला सूर्य-स्वभाव, उष्णता, क्रिया और बाहरी प्रवाह से। सुषुम्ना मध्य मार्ग है — जहाँ द्वंद्व शिथिल होकर चेतना का ऊर्ध्व प्रवाह खुलता है। शैव तंत्र का “मध्य” और हठयोग की सुषुम्ना एक-दूसरे को छूते हैं।

चलति वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

(स्रोत: हठयोगप्रदीपिका २.२)

अर्थ: वायु चलती है तो चित्त चलता है; वायु स्थिर होती है तो चित्त स्थिर होता है। इसलिए योगी वायु को स्थिर करता है।

प्राण और मन अलग-अलग नहीं चलते। मन की बेचैनी श्वास में उतरती है, श्वास की लय मन को प्रभावित करती है। इसी कारण प्राणायाम तंत्र और योग दोनों में केंद्रीय है। पर वायु-निरोध का अर्थ हिंसक रोकना नहीं। यह प्राण की ऐसी सूक्ष्म व्यवस्था है जहाँ श्वास चित्त के लिए दर्पण बनती है। साधक धीरे-धीरे देखता है कि उसकी भावनाएँ, इच्छाएँ और डर प्राण की लहरों में लिखे हुए हैं। श्वास पर सजगता आती है, तो भीतर का नक्शा स्पष्ट होने लगता है।

षट्चक्रों को भी केवल रंगीन चित्रों या ऊर्जा-केंद्रों की सूची की तरह नहीं समझना चाहिए। मूलाधार स्थिरता, भय, अस्तित्व और देह की नींव से जुड़ा है। स्वाधिष्ठान रस, कामना, प्रवाह और संबंध की भूमि है। मणिपुर अग्नि, संकल्प, पाचन और शक्ति का केंद्र है। अनाहत प्रेम, करुणा और सूक्ष्म स्पर्श का आकाश है। विशुद्धि वाणी, शुद्धि और व्यापकता की भूमि है। आज्ञा दृष्टि, एकाग्रता और अंतर्बोध का केंद्र है। सहस्रार में केंद्र की सीमा ही खुलने लगती है। यह यात्रा नीचे को नकारती नहीं; नीचे की शक्ति को ऊपर के प्रकाश में रूपांतरित करती है।

मूलाधारे स्थिता शक्तिः कुण्डली सुप्तिरूपिणी।
प्रबुद्धा योगिना सम्यक् सुषुम्णामार्गमाश्रयेत्॥
(स्रोतः हठयोग-तांत्रिक परंपरा का भाव-सार)

अर्थः मूलाधार में सुप्त रूप से स्थित कुंडलिनी शक्ति योगी द्वारा जागृत होकर सुषुम्ना मार्ग को ग्रहण करती है।

यहाँ “ऊपर उठना” भौतिक चढ़ाई नहीं, चेतना का विस्तार है। मूलाधार में वही शक्ति अस्तित्व-भय में बंधी हो सकती है। स्वाधिष्ठान में वही इच्छा बन जाती है। मणिपुर में शक्ति-अहंकार, अनाहत में प्रेम, विशुद्धि में वाणी, आज्ञा में दर्शन, और सहस्रार में आत्म-विलय। जब साधक बिना तैयारी के ऊर्जाओं को छेड़ता है, तो असंतुलन हो सकता है। इसलिए हठयोग ने शुद्धि, आसन, प्राणायाम, बंध, मुद्रा, आहार और गुरु को आवश्यक माना।

विज्ञानभैरव तंत्र इस ऊर्जा-विज्ञान को एक और दिशा देता है। वहाँ साधना किसी एक पद्धति तक सीमित नहीं। श्वास के मध्य में, विचार के विराम में, भय के क्षण में, आनंद के विस्फोट में, ध्वनि के लय में — हर जगह प्रवेशद्वार है। यह शैव तंत्र की मार्ग-निरपेक्षता है। हठयोग जहाँ प्राण को व्यवस्थित करता है, विज्ञानभैरव अनुभव के मध्य को खोलता है।

ऊर्ध्वे प्राणो ह्यधो जीवो विसर्गात्मा परोच्चरेत्।
उत्पत्तिद्वितयस्थाने भैरव्या भावनात् स्थितिः॥
(स्रोतः विज्ञानभैरव तंत्र २४, परंपरागत पाठ)

अर्थः प्राण ऊपर और अपान नीचे चलता है; उनके उदय-स्थान में भैरवी भावना से स्थित होना है।

श्वास के भीतर भी मध्य है। प्राण ऊपर उठता है, अपान नीचे जाता है, और इनके बीच एक सूक्ष्म विराम है। उसी विराम में मन कुछ क्षण के लिए अपनी सामान्य गति खो देता है। यदि साधक वहाँ सजग हो, तो श्वास केवल जैविक घटना नहीं रहती; वह भैरव-द्वार बन जाती है। हठयोग इसे प्राण की व्यवस्था से पकड़ता है; विज्ञानभैरव इसे प्रत्यक्ष ध्यान से खोलता है। दोनों मिलकर दिखाते हैं कि शरीर और चेतना अलग-अलग प्रदेश नहीं।

नाड़ी-विज्ञान का वास्तविक महत्व यही है कि यह साधक को अमूर्त दर्शन से व्यावहारिक अनुभव तक लाता है। “चेतना सब है” कहना सरल है, पर जब क्रोध में श्वास बदलती है, भय में पेट सिकुड़ता है, वासना में प्राण नीचे खिंचता है, प्रेम में छाती खुलती है — तब साधक समझता है कि दर्शन शरीर में लिखा है। तंत्र इस लेख को पढ़ना सिखाता है।

यदा सुषुम्णा नाडीषु प्रवर्तते प्राणधारणा।
तदा मनो लयं याति तदा योगी निरामयः॥
(स्रोतः हठयोग-नाड़ी परंपरा का भाव-सार)

अर्थः जब प्राण सुषुम्ना में प्रवृत्त होता है, तब मन लय की ओर जाता है और योगी संतुलित होता है।

सुषुम्ना का खुलना द्वंद्वों के शिथिल होने का प्रतीक भी है। इड़ा-पिंगला में जीवन चलता है — दिन-रात, सुख-दुःख, इच्छा-विरक्ति, गर्मी-ठंडक। सुषुम्ना मध्य है जहाँ साधक इन द्वंद्वों से परे एक सूक्ष्म स्थिरता अनुभव करता है। यही स्थिरता शैव तंत्र के मध्य-मार्ग, बौद्ध मध्यम मार्ग, और अद्वैत की साक्षी-दृष्टि को जोड़ती है। अलग-अलग शब्द हैं, पर साधना में वे एक ही आंतरिक सीधापन बन जाते हैं।

कुंडलिनी-जागरण का अंतिम उद्देश्य अनुभवों का प्रदर्शन नहीं, चेतना का प्रस्फुटन है। यदि साधक प्रकाश, ध्वनि, कंपन, दर्शन, उष्णता, आनंद में उलझ गया, तो ऊर्जा फिर मन की वस्तु बन गई। यदि वह इन सबको आते-जाते देखता हुआ अपने आधार में स्थिर रहा, तो वही ऊर्जा ज्ञान में बदलती है। हठयोग का तांत्रिक सार यही है — शरीर को छोड़ो मत, शरीर में खोओ मत; प्राण को दबाओ मत, प्राण में बहो मत; ऊर्जा को पहचानो और उसे चेतना में लौटने दो।

वज्रयान को हिंदू तंत्र की प्रतिध्वनि कहकर छोड़ देना उसके प्रति अन्याय होगा। वह अपनी स्वतंत्र अंतर्दृष्टि, करुणा, शून्यता और गुरु-योग की गहराई से खड़ा हुआ एक पूर्ण मार्ग है। वह भी मंत्र, मुद्रा, मंडल, देवता-योग और सूक्ष्म शरीर की भाषा बोलता है, पर उसका केंद्र प्रज्ञा और उपाय का अभिन्न युग्म है — शून्यता की प्रज्ञा और करुणा की सक्रियता। जहाँ शैव तंत्र शिव-शक्ति कहता है, वज्रयान प्रज्ञा-उपाय कहता है। भाषा भिन्न है, पर दोनों में चेतना और उसकी अभिव्यक्ति का रहस्य उपस्थित है।

बौद्ध तंत्र में शून्यता न nihilism है, न खाली नकार। शून्यता का अर्थ है — कोई वस्तु स्वतंत्र, स्थायी, अपने-आप में बंद सत्ता नहीं। सब परस्पर उद्भूत है, नाम-रूप से प्रकट है, स्वभावतः रिक्त है। पर यह रिक्तता मृत नहीं। उसमें करुणा जन्मती है। जब कोई स्थायी अलग “मैं” नहीं, तो दूसरे का दुःख भी मुझसे अलग कहाँ? इसलिए वज्रयान में शून्यता और करुणा साथ हैं। प्रज्ञा बिना करुणा सूखी हो जाती है, करुणा बिना प्रज्ञा अंधी।

रूपं शून्यता शून्यतैव रूपम्।

रूपान्न पृथक् शून्यता शून्यताया न पृथग् रूपम्॥

(स्रोतः प्रज्ञापारमिता हृदय सूत्र)

अर्थः रूप ही शून्यता है और शून्यता ही रूप है। रूप से अलग शून्यता नहीं, शून्यता से अलग रूप नहीं।

यह पंक्ति वज्रयान की तांत्रिक भूमि को भी प्रकाशित करती है। यदि रूप और शून्यता अलग नहीं, तो देवता-योग का अर्थ बाहरी देवता की कल्पना नहीं। साधक देवता का रूप रचता है, उसमें प्रवेश करता है, फिर देखता है कि वह रूप भी शून्य है और वही शून्यता प्रकाशमान है। इस अभ्यास में प्रतीक अंततः स्वयं को मिटा देता है। देवता रहता है, पर ठोस देवता नहीं; साधक रहता है, पर ठोस साधक नहीं। रूप शून्य में पिघलता है, शून्यता रूप में चमकती है।

तिलोपा के महामुद्रा-उपदेश का भाव अत्यंत सीधा है — मन को बाँधो मत, छोड़कर बह भी मत जाओ; उसके स्वभाव में टिक जाओ। विचार उठे तो उसे रोकना नहीं। विचार के पीछे भागना भी नहीं। उसे नग्न देखो। उसका स्वभाव प्रकाश और रिक्तता का है। यदि तुम पकड़ते हो, वह संसार है। यदि तुम पहचानते हो, वही विचार मुक्त है।

न स्मर, न कल्पय, न चिन्तय, न परीक्ष्य। न धारय, न विसर्जय, स्वभावे विश्राम्य। (स्रोतः तिलोपा, महामुद्रा-उपदेश का भाव-सार)

अर्थः न स्मरण में उलझो, न कल्पना में, न विचार में, न विश्लेषण में। न पकड़ो, न हटाओ; स्वभाव में विश्राम करो।

यह उपदेश आलस्य नहीं है। यह मन के प्रति अत्यंत सूक्ष्म जागरूकता है। साधक सामान्यतः दो काम करता है — या तो विचारों में बहता है, या उनसे लड़ता है। महामुद्रा दोनों को छोड़ती है। मन को उसके स्वभाव में देखा जाए तो वह आकाश जैसा है। विचार बादलों की तरह उठते हैं और विलीन होते हैं। बादल आकाश को दागदार नहीं करते। यही बात कश्मीर शैव मत स्पंद की भाषा में कहता है — लहर उठी, पर समुद्र से अलग नहीं।

हेवज्र और चक्रसंवर जैसी वज्रयान परंपराएँ उग्र प्रतीकों, युगल-रूपों और मंडलों का उपयोग करती हैं। इन्हें बाहरी कामुक या हिंसक प्रतीकों के रूप में देखना बड़ी भूल है। वहाँ युगल-रूप प्रज्ञा और उपाय का ऐक्य है, शून्यता और करुणा का मिलन है। उग्र देवता अज्ञान को काटने वाली

करुणा की तीव्र आकृतियाँ हैं। तंत्र में प्रतीक हमेशा दो धार वाला होता है — अयोग्य मन उसे स्थूल बना लेता है, अधिकारी साधक उसे चित्त की गहराई में प्रवेशद्वार बनाता है।

प्रज्ञोपायसमायोगाद् बुद्धत्वं नात्र संशयः। (स्रोतः वज्रयान तांत्रिक परंपरा, भाव-सार)

अर्थः प्रज्ञा और उपाय के संयोग से बुद्धत्व सिद्ध होता है; इसमें संशय नहीं।

शिव-शक्ति और प्रज्ञा-उपाय का मिलन यहाँ स्पष्ट दिखता है। शिव यदि प्रकाश है, शक्ति उसकी अभिव्यक्ति है। प्रज्ञा यदि शून्यता की अंतर्दृष्टि है, उपाय करुणा की सक्रियता है। दोनों में नारी-पुरुष का स्थूल अर्थ नहीं लेना चाहिए। वे चेतना के दो ध्रुव हैं — जानना और होना, शून्यता और प्रकटता, मौन और करुणा, प्रकाश और कर्म। साधक जब इन दोनों को अलग मानता है, वह या तो सूखा ज्ञानी बनता है या भावुक कर्मी। जब दोनों मिलते हैं, तांत्रिक परिपक्वता जन्मती है।

दलाई लामा वज्रयान की समकालीन व्याख्या में बार-बार करुणा और शून्यता की अनिवार्यता पर बल देते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि तांत्रिक साधनाएँ तभी अर्थपूर्ण हैं जब उनका आधार बोधिचित्त, नैतिकता और शून्यता की समझ में हो। यह बात हिंदू तंत्र पर भी लागू होती है। शक्ति-साधना हो या देवता-योग, यदि करुणा नहीं, यदि अहंकार घट नहीं रहा, यदि स्पष्टता नहीं, तो साधना केवल मन का नया वस्त्र बन सकती है।

सर्वधर्मा निःस्वभावाः प्रकाशस्वभावचित्ततः।

उदिताः स्वयमेवात्र स्वयमेव विलीयते॥

(स्रोतः महामुद्रा-द्वजोगचेन भाव-परंपरा)

अर्थः सभी धर्म स्वभावतः रिक्त हैं; प्रकाशमान चित्त में उठते हैं और उसी में विलीन होते हैं।

यहाँ शून्यता और प्रकाश एक हो जाते हैं। मन का स्वभाव रिक्त है, पर अंधा नहीं। वह प्रकाशमान है, पर ठोस नहीं। यही महामुद्रा की अद्भुतता है। कश्मीर शैव मत कहेगा — चित् और स्पंद। वज्रयान कहेगा — शून्यता और प्रकाश। शब्द बदल गए, पर अनुभव की गहराई में वही असीम खुलापन है। साधक जब इसे देखता है, तो विचार से डरना बंद कर देता है। वह उसे पकड़ना भी बंद कर देता है।

वज्रयान का सम्मान करना आवश्यक है क्योंकि वह केवल तुलना की वस्तु नहीं। वह एक जीवित मार्ग है जिसने करुणा को तंत्र के केंद्र में रखा। यदि शैव तंत्र साधक को शिवस्वरूप पहचानने को कहता है, वज्रयान उसे बुद्धस्वभाव में विश्राम करने को कहता है। यदि शाक्त तंत्र शक्ति को जगाता है, वज्रयान करुणा को जगाता है। यदि कौल मार्ग निषेध और आकर्षण के पार ले जाता है, वज्रयान रूप और शून्यता के अभेद में प्रवेश कराता है। तीनों का संगम मतों को मिलाकर नया मत बनाना नहीं; यह देखना है कि मनुष्य की मुक्ति की आग अनेक भाषाओं में एक ही आकाश की ओर उठती है।

अध्याय 6 — मंत्र, यंत्र और देवता: प्रतीक से प्रत्यक्ष तक

तंत्र में मंत्र, यंत्र और देवता तीन अलग वस्तुएँ नहीं। मंत्र ध्वनि का शरीर है, यंत्र रूप का शरीर, देवता चेतना के किसी विशिष्ट आयाम का जीवित प्रतीक। साधक ध्वनि से रूप में, रूप से भाव में, भाव से चेतना में प्रवेश करता है। यदि मंत्र केवल दोहराव रह गया, यंत्र केवल चित्र रह गया, देवता केवल बाहरी मूर्ति रह गए, तो तंत्र का हृदय नहीं खुला। प्रतीक का उद्देश्य प्रतीक में बाँधना नहीं; प्रतीक के आर-पार ले जाना है।

मंत्र को सामान्यतः शब्द माना जाता है, पर तंत्र उसे चेतना की स्पंदनशील संरचना की तरह देखता है। हर अक्षर एक ध्वनि है, हर ध्वनि एक कंपन, हर कंपन चित्त को किसी विशेष दिशा में व्यवस्थित कर सकता है। “बीज” मंत्र इसलिए बीज है कि उसमें वृक्ष छिपा है। साधक जप करता है, पर जप का अंतिम अर्थ ध्वनि में विलीन होना है। जब मंत्र स्वयं जपने लगे, जब साधक सुनने वाला बन जाए, तब मंत्र भीतर उतरने लगता है।

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः।

शतलक्षप्रजप्तोऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते॥

(स्रोत: तांत्रिक मंत्र-परंपरा, कुलार्णव-संबद्ध भाव)

अर्थ: जो साधक मंत्र का अर्थ और मंत्र-चैतन्य नहीं जानता, उसके लाखों जप से भी सिद्धि नहीं होती।

यह पंक्ति जप को यांत्रिकता से बचाती है। मंत्र का अर्थ केवल शब्दार्थ नहीं; उसका जीवित चैतन्य है। “ह्रीं” का शब्दार्थ कहाँ खोजोगे? “क्लीं” को शब्दकोश में कैसे पकड़ोगे? बीज मंत्र अर्थ से अधिक चेतना की दिशा है। साधक जब मंत्र जपता है, तो वह ध्वनि को अपने मन पर अंकित नहीं करता; वह अपने मन को ध्वनि के चैतन्य में पिघलने देता है। इसलिए मंत्र में उच्चारण, लय, दीक्षा, भावना और मौन — सब आवश्यक हैं। यंत्र को भी केवल ज्यामिति कहना अधूरा है। त्रिकोण, वृत्त, बिंदु, कमलदल, रेखाएँ — ये सब मन को एकाग्र करने के उपकरण हैं, पर उससे अधिक भी हैं। यंत्र चेतना का दृश्य-मंडल है। श्रीचक्र इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। बाहर से भीतर जाते हुए साधक आवरणों को पार करता है, त्रिकोणों की शक्तियों को पार करता है, और अंततः बिंदु तक पहुँचता है। बिंदु में रूप की पराकाष्ठा और अरूप की शुरुआत एक हो जाती है।

बिन्दु त्रिकोणाष्टदलषोडशारं भूपुरादिकम्।

यन्त्रं शक्तेः शरीरं स्यात् साधकस्य च मार्गदर्शकम्॥

(स्रोत: श्रीविद्या यंत्र-परंपरा का भाव-सार)

अर्थ: बिंदु, त्रिकोण, कमलदल और भूपुर आदि से बना यंत्र शक्ति का शरीर और साधक का मार्गदर्शक है।

यंत्र मन के लिए विश्राम का स्थान है। मन सामान्यतः असंख्य दिशाओं में बिखरा रहता है। यंत्र उसे पवित्र संरचना देता है। पर यंत्र का लक्ष्य रेखा में बाँधना नहीं। साधक जब यंत्र में प्रवेश करता है, वह धीरे-धीरे अपने ही चित्त-मंडल में प्रवेश करता है। बाहरी रेखाएँ भीतर की वृत्तियों को व्यवस्थित करती हैं। अंततः जब बिंदु पर ध्यान स्थिर होता है, तो देखने वाला, देखा हुआ और देखने की प्रक्रिया — तीनों सूक्ष्म होने लगते हैं।

देवता-साधना में भी यही क्रम है। पहले देवता बाहर है। फिर साधक देवता को आमंत्रित करता है। फिर देवता को हृदय में प्रतिष्ठित करता है। फिर देवता की मुद्रा, मंत्र, भाव, करुणा, शक्ति — सबको स्वयं में अनुभव करता है। अंततः साधक देवता में तदाकार होता है। वज्रयान में इसे देवता-योग के रूप में अत्यंत विकसित किया गया। शाक्त और शैव तंत्रों में भी देवता केवल पूजा की वस्तु नहीं, चेतना की पहचानी जाने वाली अवस्था है।

देवो भूत्वा देवं यजेत्। (स्रोत: तांत्रिक देवता-साधना परंपरा)

अर्थ: देवता बनकर देवता की पूजा करनी चाहिए।

यह वाक्य तंत्र की सबसे गहरी पद्धति खोलता है। यदि साधक स्वयं को छोटा, अपवित्र, अलग और भयभीत मानता हुआ देवता की पूजा करता है, तो दूरी बनी रहती है। तंत्र उसे देवता-भाव में प्रवेश कराता है। इसका अर्थ अहंकार का देवता बनना नहीं। इसका अर्थ है — साधक अपनी सीमित पहचान को ढीला करे और देवता के चैतन्य में स्थापित हो। पूजा तब याचना से तदाकारता की ओर बढ़ती है।

विज्ञानभैरव तंत्र में ध्वनि, श्वास, भाव, मध्य, आकाश, भय, आनंद — सब साधना के द्वार हैं। यह बताता है कि तंत्र प्रतीक से प्रत्यक्ष तक जाता है, पर प्रतीक को नकारकर नहीं। ध्वनि उठती है; उसके लय में प्रवेश करो। श्वास आती है; उसके विराम में ठहरो। दृष्टि किसी रूप पर टिके; रूप के भीतर के आकाश को पहचानो।

नादान्ते शून्यभावेन भैरवो भवति ध्रुवम्। (स्रोत: विज्ञानभैरव तंत्र, नाद-धारणा भाव)

अर्थ: नाद के अंत में शून्यभाव में स्थित होने पर भैरव-भाव प्रकट होता है।

मंत्र भी अंततः नाद में और नाद शून्य में जाता है। ध्वनि का प्रयोग मौन तक पहुँचने के लिए है। यदि साधक ध्वनि में अटक गया, मंत्र अधूरा है। यदि ध्वनि के पीछे के मौन में उतर गया, मंत्र सफल है। यंत्र भी रूप से बिंदु में और बिंदु से अरूप में जाता है। देवता भी रूप से भाव में, भाव से चैतन्य में, चैतन्य से अद्वैत में जाता है। प्रतीक का अंतिम उद्देश्य स्वयं को मिटा देना है।

सौन्दर्यलहरी का श्रीविद्या भाव इसी पुल को सुंदरता से खोलता है। देवी का वर्णन काव्य भी है, यंत्र भी, मंत्र भी, साधना भी। वहाँ सौंदर्य केवल सौंदर्य नहीं; वह चेतना को खींचने वाली शक्ति है। साधक रूप से आकर्षित होता है, फिर उस आकर्षण को भीतर मोड़ता है, फिर देखता है कि सौंदर्य स्वयं चिति की चमक है।

तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरुणश्रीसरणिभिः दिवं सर्वापूर्वमरुणिमनिमग्नां स्मरति यः। (स्रोत: सौन्दर्यलहरी १६, प्रारंभिक पंक्ति)

अर्थ: जो साधक देवी की अरुण प्रभा से आकाश और पृथ्वी को रंजित देखता है, वह शक्ति के व्यापक प्रकाश का ध्यान करता है।

देवी की छाया से जगत रंग जाता है — यह काव्य नहीं, साधना की दृष्टि है। जब मंत्र जीवित होता है, जगत ध्वनि से भरता है। जब यंत्र जीवित होता है, जगत पवित्र रचना दिखता है। जब देवता जीवित होता है, जगत देवता की देह बनता है। तब साधक की आँख बदलती है। वह बाहर से भीतर आया था, अब भीतर से बाहर देखता है। सब प्रतीक उसी प्रत्यक्षता में विलीन हो जाते हैं।

मंत्र, यंत्र और देवता साधक को पकड़ने के लिए नहीं दिए गए। वे उसे धीरे-धीरे अपनी ही चेतना में वापस ले जाने के लिए हैं। मंत्र अंततः मौन में छूटेगा। यंत्र अंततः बिंदु में पिघलेगा। देवता अंततः साधक के हृदय में अद्वैत प्रकाश बन जाएगा। जब प्रतीक और साधक का भेद नहीं रहता, तब तंत्र अपने उद्देश्य पर पहुँचता है। तब कोई बाहर पूजा नहीं कर रहा; चेतना स्वयं को पहचान रही है।

आज मनुष्य पहले से अधिक जुड़ा हुआ दिखता है, पर भीतर से अधिक टूटा हुआ है। शरीर एक तरफ है, मन एक तरफ, काम एक तरफ, संबंध एक तरफ, आध्यात्मिकता एक तरफ। आधुनिक जीवन ने सुविधा दी, पर समग्रता खो दी। तंत्र इसी टूटन के युग में फिर से आवश्यक हो उठता है, क्योंकि तंत्र का सार त्याग नहीं, समावेशन है। वह कहता है — कोई क्षेत्र साधना से बाहर नहीं, यदि देखने वाला सजग हो। शरीर भी मार्ग है, भोजन भी, संबंध भी, श्रम भी, कला भी, थकान भी, प्रेम भी, मृत्यु भी।

महानिर्वाण तंत्र में गृहस्थ जीवन और साधना का समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है। वहाँ साधक को संसार से भागने को नहीं कहा जाता। धर्म, दान, मंत्र, उपासना, कुलाचार, समाज और मुक्ति — ये सब साथ रखे जाते हैं। तंत्र जानता है कि अधिकांश मनुष्य जीवन के बीच में साधना करेंगे। इसलिए जीवन को ही मंडल बनाना होगा। घर वेदी हो सकता है, भोजन प्रसाद, संबंध दर्पण, काम सेवा, और मौन ध्यान।

गृहे स्थितोऽपि यः शान्तः शुद्धचित्तः समाहितः।

स योगी स च मुक्तात्मा न वनवासेन केवलम्॥

(स्रोत: महानिर्वाण तांत्रिक गृहस्थ-भाव, परंपरागत सार)

अर्थ: जो घर में रहते हुए भी शांत, शुद्धचित्त और समाहित है, वही योगी और मुक्तात्मा है; केवल वनवास से मुक्ति नहीं।

यह पंक्ति आधुनिक साधक को गहरी राहत देती है, पर साथ ही जिम्मेदारी भी देती है। घर में रहना साधना से छूट नहीं। संबंधों में सजगता चाहिए। कमाने में ईमानदारी चाहिए। भोजन में स्मृति चाहिए। शरीर में सम्मान चाहिए। काम में करुणा चाहिए। यदि साधक कहे कि मैं संसार में हूँ इसलिए साधना संभव नहीं, तो तंत्र कहता है — संसार ही तुम्हारी साधना है। यदि वह कहे कि सब साधना है इसलिए कुछ भी मनमाना चलेगा, तंत्र कहता है — अचेतनता कभी साधना नहीं।

आज शरीर या तो पूजा जाता है, या उपेक्षित। तंत्र शरीर को न देवता बनाता है, न शत्रु। शरीर वह स्थान है जहाँ चेतना अभी अनुभव कर रही है। शरीर में तनाव है तो मन की कथा लिखी है। श्वास में बेचैनी है तो भीतर का प्रवाह दिख रहा है। संबंधों में प्रतिक्रिया है तो अहंकार की गाँठ दिखती है। तंत्र हमें शरीर और जीवन को पढ़ना सिखाता है। यह पढ़ना ही आधुनिक साधना का प्रारंभ हो सकता है।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्। (स्रोत: विज्ञानभैरव तंत्र, परंपरागत भाव)

अर्थ: मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ परम पद की संभावना है।

कार्यालय में मन तनाव में गया — वहीं देखो। भोजन में मन लालच में गया — वहीं देखो। संबंध में मन स्वामित्व में गया — वहीं देखो। अकेलेपन में मन डर में गया — वहीं देखो। तंत्र कहता है कि ध्यान केवल कुशन पर नहीं। हर प्रतिक्रिया एक द्वार है। यदि तुम प्रतिक्रिया में सो गए, संसार है। यदि प्रतिक्रिया को चेतना में देखा, साधना है। यही सहज तंत्र है — जीवन को छोड़कर नहीं, जीवन के बीच जागना।

भोजन तंत्र में केवल स्वाद नहीं। वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश का मिलन है। संबंध केवल भावनात्मक लेन-देन नहीं; वह अहंकार के घर्षण और प्रेम की संभावना का क्षेत्र है। काम केवल आजीविका नहीं; वह कर्मयोग और ऊर्जा की अभिव्यक्ति हो सकता है। सृजन केवल कला नहीं; शक्ति का प्रवाह है। तंत्र इन सबको पवित्रता में वापस लाता है। पवित्रता का अर्थ बाहरी कठोरता नहीं; सजगता की उपस्थिति है।

लोकानन्दः समाधिसुखम्। (स्रोत: शिवसूत्र १.१८)

अर्थ: लोक का आनंद समाधि का सुख हो सकता है।

यह वाक्य आधुनिक मन के लिए खतरनाक भी है और मुक्तिदायी भी। खतरनाक इसलिए कि अचेतन मन इसे भोग की अनुमति बना सकता है। मुक्तिदायी इसलिए कि जाग्रत साधक देख सकता है — संसार का आनंद भी यदि पकड़ से मुक्त हो, तो वह चित्त को विस्तार दे सकता है। संगीत सुनो, पर उसमें खोकर अचेतन मत हो। प्रेम करो, पर स्वामित्व में मत गिरो। भोजन करो, पर लोभ में नहीं। कार्य करो, पर अहंकार की जकड़ में नहीं। तब लोक और समाधि विरोधी नहीं रहते।

स्वामी विवेकानंद ने जीवन में शक्ति, निर्भयता और अद्वैत को साथ रखने की बात कही। यही तंत्र की आधुनिक धारा है। कमजोर आध्यात्मिकता जीवन से भागती है। सच्ची आध्यात्मिकता जीवन में उतरती है और वहाँ भी चैतन्य को नहीं खोती। गोपीनाथ कविराज की साधना-दृष्टि भी हमें याद दिलाती है कि तंत्र को केवल पढ़कर नहीं समझा जा सकता। जीवन स्वयं दीक्षा बन सकता है, यदि साधक ईमानदार हो। दलाई लामा की करुणा-दृष्टि यहाँ जुड़ती है — जागरण यदि करुणा में नहीं उतरा, तो वह पूरा नहीं।

चित्तं मन्त्रः। (स्रोत: शिवसूत्र २.१)

अर्थ: चित्त ही मंत्र है।

यह सूत्र आधुनिक साधना को बहुत सरल बना देता है। तुम्हारा चित्त ही तुम्हारा मंत्र है। तुम दिन भर क्या जप रहे हो? भय? शिकायत? तुलना? आकांक्षा? या स्मृति? यदि चित्त बार-बार “मैं अधूरा हूँ” जपता है, तो जीवन उसी का यंत्र बन जाएगा। यदि चित्त सजगता, करुणा और सत्य में लौटता है, तो वही मंत्र बनता है। इसलिए तंत्र में साधना केवल मालाओं की संख्या नहीं; चित्त की दिशा है।

समकालीन जीवन में तंत्र का अर्थ बाहरी गुप्त कर्मकांडों की नकल नहीं। इसका अर्थ है — अपने जीवन को खंडों में बाँटना बंद करना। आध्यात्मिकता और देह, ध्यान और संबंध, ज्ञान और काम, भक्ति और भोजन, मौन और संवाद — ये शत्रु नहीं। इन सबमें चेतना खोई जा सकती है, और इन सबमें चेतना पहचानी भी जा सकती है। तंत्र दूसरे विकल्प का नाम है।

चित्तिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसङ्कोचिनी चित्तम्। (स्रोत: प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ५)

अर्थ: चित्ति जब चेतन पद से उतरकर ज्ञेय के संकोच में आती है, तो चित्त कहलाती है।

यह अंतिम स्मरण है। चेतना कभी सच में सीमित नहीं हुई, पर उसने स्वयं को चित्त के संकोच में अनुभव किया। “मैं यह शरीर हूँ”, “मैं यह कहानी हूँ”, “मैं यह इच्छा हूँ”, “मैं यह भय हूँ” — ये संकोच हैं। तंत्र इन संकोचों से लड़ता नहीं। वह उनमें प्रकाश डालता है। जैसे ही संकोच देखा जाता है, वह थोड़ा खुलता है। फिर चित्त चित्ति की ओर लौटता है। यही स्मरण है, यही मुक्ति की दिशा है।

तंत्र का अंतिम शब्द कोई नई तकनीक नहीं। अंतिम शब्द है — याद करो। तुम शरीर में हो, पर शरीर तक सीमित नहीं। तुम संबंधों में हो, पर संबंधों से बने नहीं। तुम संसार में हो, पर संसार तुमसे बाहर कोई दूसरी सत्ता नहीं। तुम साधना कर रहे हो, पर साधना का लक्ष्य तुम्हारे भीतर पहले से उपस्थित चेतना है। आगम, निगम, कुल, शाक्त, शैव, वज्रयान — सब उँगलियाँ हैं। चाँद वही है — वह स्वयंप्रकाश चैतन्य जो कभी सीमित नहीं हुआ। बस भूल गई थी। अब याद आ रही है।